एक जमाने में गाय काटने वाले और पूजा करने वाले दोस्त हुआ करते थे –जावेद नकवी

1857 के भारतीय विद्रोह के प्रारम्भिक दिनों में जिस तरह से गोरे पिटे उस स्थिति में अंग्रेज इतिहासकारों ने कहा था ''बच्चों की हत्या करने वाले राजपूत, ब्राम्हण, कट्टरपंथी मुस्लिम सभी विद्रोह में एकजुट हो गए, गाय काटने वाले हो या गौपूजा करने वाले या सुअरों से नफरत करने वाले हों, सभी ने एकजुट होकर अंग्रेजों के खिलाफ विद्रोह किया।''

पिछले माह भारतीय सरकार ने विद्रोह की घटनाओं का जो प्रदर्शन कराया, वह इतना घटिया था कि लगा कि जैसे कोठे की औरतें मंच पर ठुमके लगा रही हों। माफ करना ऐसे नाटकबाजी से।

एक बार तो हमने अग्रेजों के मन में इतना आतंक बैठा दिया था लेकिन वो खौफ उनके चेहरों से जल्दी ही नदारद हो गया और 1947 तक आते–आते उन्होने कट्टरपंथी मुस्लिमों और संकीर्ण मानसिकता वाले ब्राह्मणों को दो हिस्सों में बांट दिया, दोस्ती के वो दिन हवा हो गए जब आजादी की लड़ाई में वें एक साथ लड़े थे अब दोनों अलग अलग अपने–अपने रास्ते चले गए।

आज 1857 की विचारधारा को ध्रुवीकृत करके देखा जा रहा है। कम्युनिस्ट पार्टी ने इस बात की ओर अपना ध्यान दिया कि आरएसएस और बीजेपी इस दिन को उत्सव की तरह मनाने में कोई रुचि नहीं ले रही है। बस इसका महत्व केवल राष्ट्रीय स्तर तक ही सिमट कर रह गया है। 1857 के बाद भी गोरों ने फूट डालो और शासन करो' की जो नीति अपनाई उसमें उनका साथ अपने देश के साम्प्रदायिक तत्वों ने दिया जिसमें कट्टरपंथी हिन्दू और मुसलमान दोनो ही शामिल थे।

हालांकि भाजपा नेता लालकृष्ण आडवानी ने ''भारत के उन सपूतों और बेटियों के लिए श्रद्धांजलि दी जिन्होंने विदेशियों से भारत को आजाद कराने के लिए संघर्ष किया, ये विदेशी, जो व्यापार करने के लिए भारत आए थे और शासक बन बैठे। आडवानी ने भाजपा को किसी भी प्रकार की निंदा से बचाने के लिए अपने प्रिय स्वतंत्रता सेनानियों के नाम भी दिए। मंगल पांडे ,बहादुरशाह जफर, झांसी की रानी लक्ष्मीबाई, कानपुर के नानासाहब पेशवा, अजिमुल्लाखान, तांत्या टोपे, बिहार के जगदीशपुर के राजकुंवर और अवध के मौलवी अहमदशाह आदि को उन्होंने याद किया।

भारतीय सिक्खों ने भी 1857 को मनाना कभी नहीं चाहा। उन्होंने 1857 से भी पहले अंग्रेजों से जंग की थी, इस बात को उन्होंने पिछले सप्ताह भारतीय संसद में उठाया। लोकसभा उपाध्यक्ष चरणजीत सिंह अटवाल ने कुछ सांसदों के साथ मिलकर इस बात का विरोध किया कि 1845 के आंग्ल–सिख युद्ध को आजादी की पहली जंग के रूप में क्यों नहीं मनाया गया। उनका कहना था कि 1857 का संघर्ष आजादी की पहली जंग नही है क्योंकि गोरों और सिखों का युद्ध इससे पहले हुआ था। राष्ट्रपति कलाम और प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह व अन्य द्वारा संबोधित सम्मेलन के बीच में ही विरोध शुरू हो गया।

अगर अटवाल की बात को कानूनन सही माना जाता है तो यह भारतीय राजनीतिक वर्ग के लिए शर्म की बात होगी। क्योंकि तब मैसूर के टीपू सुल्तान पर भी फ़िर से चर्चा करनी होगी क्योंकि इसे भी दक्षिण भारत के कई हिस्सों में अंग्रेज विरोधी इतिहास के रूप में देखा जाता हैं। दक्षिणपंथी उसे एक खलनायक के रूप में देखते हैं जिसने अपनी हिन्दू प्रजा को बहुत सताया। हम सब जानते है कि जब लॉर्ड कार्नवालिस की सेना ने टीपू को मारा था तब हैदराबाद के निजाम और

मराठों ने उसे धोखा दिया था। इससे पहले ब्रिटिश गवर्नर जनरल योर्कटाउन युद्व में फ्रांसीसी व अमेरिकी सेनाओं से बुरी तरह हारा था और उसकी हार की वजह से ही अमेरिका स्वतंत्र हुआ। वह टीपू से भी हार गया होता अगर उसके अपने ही भारतीय साथी उसे धोखा नही देते। अटवाल के तर्क के कारण ही यह मुद्दा सामने आया है कि इतिहास के इस हीरो को भी उचित पहचान मिलनी चाहिए।

नक्सलवादी अपने तरीके से 1857 को देखते हैं उनका मानना है कि यह शक्तिशाली स्वतंत्रता संघर्ष बनने के लिए बहुत जल्दी शुरू हो गया था जिसके कारण 20वी शताब्दी में ब्रिटिश युग का समापन हुआ। इसमें श्रमिकों के क्रांतिकारी युद्ध भी शामिल है जिसे 1871 में 'पेरिस कम्यून' के रूप में सारी दुनिया नें देखा। इसके अतिरिक्त फ़रवरी–नवम्बर 1917 में रूसी क्रांति के दौरान सोवियत श्रमिकों और किसानों की भी क्रांति हुई ।

नक्सलियों का तर्क है कि विद्रोह की सफ़लता को देखकर ही अंग्रेजों को सबक मिला। ईस्ट इण्डिया कंपनी को खत्म कर दिया गया। भारत में अंग्रेजी राज के तौर तरीकों में बदलाव किया गया। भारत में दोबारा ऐसा विद्रोह न हो इसके लिए गोरों ने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के रूप में सुरक्षा कवच तैयार कर लिया ।

सीपीआई(एमएल) के नक्सलियों के एक ग्रुप ने विद्रोह का विश्लेषण करते हुए बताया कि भारतीयों ने सशस्त्र विद्रोह से शुरू करते हुए भी, राजनीति के बिल्कुल तुच्छ स्तर पर पहुंचकर थोडे से सुख और सुधारों के लिए विनती करनी शुरू कर दी क्योंकि इस अभिजात वर्ग को अंग्रेजों ने, पढ़ाया ही यही सब था। लेकिन फ़िर भी भारत की अधिकांश जनता ने तो 1857 के राष्ट्रीय संघर्ष के साथ ही राजनीतिक शुरुआत कर दी थी। लेकिन आने वाले सालों में क्रांतिकारियों और सुधारवादियों को आजादी की जंग में ही, दो विरोधी गुटों की तरह खडा कर दिया गया।

अब अंत में एक नजर इस पर डालते है कि भारत और पाकिस्तान ने 1857 की 100 वी वर्षगांठ 1957 को किस तरह मनाया। 50 साल पहले तक दोनो ही राज्य विश्वस्त थे। दोनों ने हीं उन शहीदों को श्रद्धांजलि दी जो एक शताब्दी पहले अंग्रेजो के खिलाफ लड़ रहे थे। एक जमाना था जब भारतीय समाचार–पत्रों ने देश की सीमाओं के पार की खबरो को भी अपने यहां जगह दी। लेकिन यह एकता पिछले माह जाने कहां गायब हो गई ?

अवसर था कि एक और पुरानी चीज के बहाने एका की जाती। अवध की बेगम हजरत महल जो 1857 में अंग्रेजों के दमन के डर से काठमांडू भाग गई थी और वहाँ वही मर गई। काठमांडू में गंदे फुटपाथ पर बनी उनकी टूटी फूटी कब्र के चारो ओर दीवारें बनाने के लिए भारत और पाकिस्तान ने मिलकर कभी फैसला लिया था। जिसके लिए फंड भी तय कर दिया गया था। लेकिन आज तक इस मामले पर कुछ नहीं किया गया क्योंकि हिन्दू और मुस्लिम के ध्रुवीकरण नें उन्हें विपरीत दिशाओं में ला खड़ा किया है। *पंडित और मुसलमनों* को 1857 के उत्सव को सही मायने मे मनाने के लिये एक बार फिर दोस्ती का हाथ बढ़ाने की जरूरत है। (पीएनएन)